कुछ स्मृतियां

एक नए तरीके की पढ़ाई की

अनुपम गेरा

"बिना परीक्षा के मूल्यांकन का तरीका क्या है? बड़ा सीधा-सा है, हर रोज़ जो विषय विद्यार्थियों को पढ़ाए जाते हैं उनमें विद्यार्थी की कैसी भागीदारी रहती है। ऐसा करने से मूल्यांकन साल में एक बार की बजाए रोज़ होता है"

इसी साल पहली मई से चार मई तक मैं जयपुर में 'दिगंतर' समूह के बीच रही। उनके द्वारा चलाई जा रही चार प्राथमिक शालाओं में से दो शालाओं (बन्धयाली और रतवाली गांव की) में मैंने अध्यापकों और बच्चों के बीच कुछ समय बिताया। वहीं के अपने अनुभव बांटना चाहूंगी।

सुबह ठीक आठ बजे जब सब विद्यार्थी और अध्यापक स्कूल पहुंच जाते हैं तो शुरू होता है खूब जमकर सफाई का कार्यक्रम। शिक्षक और विद्यार्थी दोनों मिलकर पूरे स्कूल की सफाई करते हैं। सफाई के बाद मैदान में 'असेंम्बली' होती है जिसमें बच्चे और शिक्षक गोल चक्कर बनाकर बैठ जाते हैं। पहले, दो मिनट का मौन होता है और उसके बाद कुछ अध्यापक बच्चों के बीच कविता या कोई नाटक आदि करते हैं। मकसद होता है — बच्चों की भाषा के विकास के साथ-साथ उनकी झिझक और हिचक को दूर करना। नाटक के बाद उछलते-कूदते, नाटक के कुछ वाक्य ज़ोर-ज़ोर से बोलते बच्चे अपने-अपने समूहों में चले जाते हैं।

इन शालाओं में कक्षा के स्थान पर समूह हैं और समूहों का आधार है कि बच्चा पढ़ाए गई चीज़ों को कितना समझ पाया है। उनकी इस समझ का मूल्यांकन अध्यापक ही करते हैं और वह भी बच्चों की बिना कोई औपचारिक परीक्षा लिए। प्रश्न उठता है कि बिना परीक्षा के मूल्यांकन का तरीका क्या है? बड़ा सीधा-सा है, हर रोज़ जो विषय विद्यार्थियों को पढ़ाए जाते हैं उनमें विद्यार्थी की कैसी भागीदारी रहती है। ऐसा करने से मूल्यांकन साल में एक बार की बजाए

रोज़ होता है। हां, पांचवी की परीक्षा इन बच्चों को औपचारिक स्कूल के बच्चों के समान ही देनी होती है पर उससे पहले उन्हें किसी परीक्षा में नहीं बैठना होता। है न मज़ेदार बात – न परीक्षा का डर, न दबाव और न ही आपस में प्रतिस्पर्द्धा।

खैर, तो हम बच्चों के साथ उनके समूहों में जा रहे थे। अपनी मेहनत से सजाए और साफ किए गए कमरों में बैठे हुए विद्यार्थियों के अलग-अलग समूह। 'गगन समूह' सुलेख लिख रहा है तो 'सूरज समूह' ज़ोर-ज़ोर से कहानियां पढ़ रहा है। वहीं दूसरी ओर 'सदाबहार समूह' अपनी अध्यापिका के साथ पहेली-पहेली खेल रहा है। नीचे ज़मीन पर शिक्षक और विद्यार्थियों को एक साथ दोस्तों जैसा बैठे देखना मुझे बहुत अच्छा लगा। खेल ही खेल में चल रही थी शिक्षा। विषय पढ़ाए जाते हैं – हिन्दी, अंग्रेज़ी, गणित, पर्यावरण, कला और नाटक। सप्ताह में एक दिन खेल कूद का होता है।

एक और निराली बात है इन शालाओं में; वह यह कि विद्यार्थी अध्यापकों को उनके नाम से पुकारते हैं। इस बारे में मैंने जब शिक्षकों से बात की तो उन्होंने बताया कि ऐसा शिक्षक-विद्यार्थी के संबंध को आत्मीय बनाने के लिए किया गया है। हालांकि ऐसा नहीं है कि नाम लेकर बुलाने से विद्यार्थियों के मन में शिक्षक के प्रति आदर-भाव कम है। शिक्षकों का खुद का मानना था कि 'मास्साब' शब्द उन्हें भी कुछ अच्छा नहीं लगता। उनके अनुसार 'मास्साब' माने 'मारसाहब'।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यहां अध्यापकों को भी पूर्ण स्वतंत्रता है और इसी स्वतंत्रता ने पैदा किया है आत्मानुशासन। बच्चों को क्या पढ़ाया है, कैसे पढ़ाना है, हर बच्चे का मूल्यांकन, कोई बच्चा अगर लगातार पीछे रहता है तो उसके माता-पिता से बातचीत करके कारणों का पता करना...। यह सब शिक्षक अपनी ज़िम्मेदारी समझते हैं। स्कूल में कोई हैडमास्टर नहीं है। शिक्षकों को अपना मूल्यांकन भी खुद ही करना होता है। उनका सुबह का समय (8 बजे से 2 बजे तक) बच्चों के साथ बीतता है और 2 बजे से 4 बजे तक वे आपस में, अगले दिन क्या पढ़ाना हैं, इस बारे में चर्चा करते हैं और साथ ही उस दिन पढ़ाए गए विषयों से संबंधित बच्चों का मूल्यांकन भी करते हैं।

दो चार दिन रहने के बाद जब मैं वहां से चली तो कई सुखद स्मृतियां थीं, यहां रहना बिल्कुल एक नया-सा अनुभव था।

अनुपम गेरा - रसायन शास्त्र में अध्ययन, चंडीगढ़ में निवास।